अथ

अनुभवानन्दलहरी

श्रीस्वामि केशवानन्द निर्मिता

श्रीशङ्करानन्दावधूत विरचितया

सान्वय भाषाटीकया भूषिता

सा च

शिवलाल गणेशीलाला

भिधानाभ्यां श्रेष्ठिभ्यां

मुरादाबादनगरे

स्वकीये लक्ष्मीनारायण यंत्रालये

मुद्रापिता

सं० १९५९

श्रीमद्भागवत ।

सान्वय भाषाटीका सहित ।

मूल अन्वयांक, विस्तार के साथ भाषाटीका, टिप्पणी, माहात्म्य, चित्र और सूची सहित अत्युत्तम ।

श्रीमद्भागवत जैसा ग्रन्थ है उसको कौन नहीं जानता है ! इसकारण उसकी तारीफ करना सूर्य को दीपक दिखाना है परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि–इस पुस्तक को हम ने बहुत कुछ रुपया खर्चकर और परिश्रम उठाकर जैसी उत्तमता से सर्वसाधारण को लाभकारी करदिया है, सो देखने से ही प्रतीत होगा, छापा उत्तम बम्बई टाइप, सफेद चिकना मोटा कागज, भाषानुवाद तो ऐसा ठीक और सरल आजतक भारतवर्ष में कहीं छपाही नहीं, पुस्तक बहुत बडी होजाने के कारण उत्तम विलायती कपडे की दो जिल्दें बनवाईगई हैं दोनों जिल्दों की पृष्ठसंख्या नीचे लिखे अनुसार है तोल में पक्की तीन सेर है, इतनेपर भी कीमत ५) पाँचरुपयाही रक्खी है डाक में मँगवानेवालों को एकरुपया डाकमहसूल का अलग देनाहोगा दश पुस्तकें एकसाथ खरीदनेवालों को एक पुस्तक मुफ्त मिलेगी। समस्त पुस्तक की पृष्ठसंख्या २१७६ है ।

गौरीदिगम्बर प्रहसन–सटीक महामहोपाध्याय श्रीशङ्कर मिश्र विरचित दाम केवल .... ≡,

गोपालतापनीउपनिषद्–अथर्ववेदान्तर्गत-संस्कृत व्याख्या और भा० टी० स० मूल्य ।।) डाकखर्च माफ.

विज्ञाननाटकहिन्दी–श्री १०८स्वामिशङ्करानन्दकृत।≈,

विज्ञाननाटकउर्दू–श्री १०८ स्वामिशङ्करानन्दकृत ।≈,

आत्मरामायण–श्री १०८ स्वामिशङ्करानन्दकृत ।।,

॥ ॐ सच्चिदानन्दात्मने नमः ॥

अथानुभवानन्दलहरी

यद्ब्रह्म द्वयरूपकं पुनरहो ईशश्च माया तनु सूक्ष्मां सृष्टिकलां विधाय विधिवद्धैरण्य गर्भाख्यकम् ॥ स्थूलं स्थावर जंगमं च रचयद्वैराज रूपात्मकं दृष्टिं व्याष्टि मयीं विलंव्य विलसञ्चास्तेपि तस्मै नमः ॥ १ ॥

अन्वय पदार्थ-हरिः ॐ श्रीगुरुपरमात्मने नमः । (यत्ब्रह्म अद्वयरूपकं) जो ब्रह्म अद्वयरूप है अर्थात् सजातिय बिजातिय सुगत भेदरहित है (अहो पुनः माया तनुईशः) बड़ा आश्चर्य है कि—फिर वही माया मय शरीरको धारण करने से ईश्वर नामवाला है (सूक्ष्मां सृष्टिकलां विधिवत् विधाय हैरण्यगर्भाख्यकम्) सूक्ष्मसृष्टि की विधिवत् रचना करने से जो हिरण्यगर्भ नामवाला है (च स्थूलं स्थावर जङ्गमं रचयत् वैराज रूपात्मकम्) और जो पुनः स्थूल स्थावर जङ्गम सृष्टि

रचने से विराट् नामवाला है (च व्यष्टिमयीं दृष्टिं अवलंब्य विलसत् आस्तेऽपि तस्मै ब्रह्मणे नमः)फिर जो व्यष्टिमयी दृष्टि को आश्रय करके अर्थात् केवल देहमात्रमें ही अभिमान करके विलास करताहुआ जीवरूप से स्थितहै ऐसा अद्भुत विलासहै जिस ब्रह्म का तिसके अर्थ मै नमस्कार करता हूँ॥ १ ॥

इस प्रकार स्पंद निस्पंद रूप पवन वत् अक्रियरूप क्रियरूप अद्वयब्रह्म को नमस्कार करके अब ग्रन्थकार गुरु शिष्यके सम्बाद से ग्रंथ का आरम्भ करते हैं।

शिष्यउवाच–विविधदोषदशादलितं मनो मम न निर्वृतिमेति मनागपि॥ ननु च तस्य पराक्रमणक्रमं करुणया वद हे करुणाकर ॥ २ ॥

अन्वय पदार्थ-(हे करुणाकर मम मनः विविध दोषदशा दलितं) हे करुणाके स्थान श्रीगुरो मेरा मन नानाप्रकार की दोष दशा [रागद्वेष] करके दला हुआ है अर्थात् महापीडित है (मनागपि निर्वृतिं न एति) क्षणमात्र भी अखण्डानन्दको नहीं प्राप्त होता है(ननुचतस्य पराक्रमण क्रमम्-

करुणयावद)मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि तिस मनके निग्रहके प्रकारको कृपा करके कहो॥ २ ॥

इसप्रकार रागद्वेष रूपी अग्नि में जलते हुए शिष्य के व्याकुल वचन को श्रवण करके दयाके समुद्र श्रीगुरु शिष्य के मन को शान्त करते हुए उत्तर कहैं हैं ॥

श्रीगुरुरुवाच–विवेकं वैराग्यं शम दम समाधानविततिं मुमुक्षां चासाधावगत वपुषं श्रोत्रियगुरुम् ॥ समित्पाणिः सृप्त्वा विगतमलता श्रुत्यसुगुरोः परब्रह्मानन्दं श्रुति शिखर वेद्यं वितनुषे ॥ ३ ॥

अन्वय पदार्थ–श्रीगुरु कहते हैं । हे शिष्य ! (विवेकं आसाद्य) प्रथम विवेक को सम्पादन कर (वैराग्यं आसाद्य) पुनः वैराग्य को सम्पादन कर (शमदम समाधानविततिं असाद्य) फिर शम, दम, उपरमा, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इनको सम्पादन कर । यहां शम दम के साथ में जो समाधान का सम्बन्ध है सो उपरमा तितिक्षा श्रद्धा का उपलक्षक जानना और विततिं

का जो विस्तार अर्थ है सो भी उपरमा आदिका बोधकहै (चमुमुक्षां आसाद्य) पुनः मुमुक्षता को सम्पादन कर (अवगत वपुषं श्रोत्रियगुरुं समित्पाणिः स्पृष्ट्वा सुगुरोविगतमलं आश्रुत्य श्रुतिशिखरवेद्यं परब्रह्मानन्दं वितनुषे) हस्तविल्ववत् साक्षात्कार किया है स्वरूप का जिन्होंने ऐसे जो वेदशास्त्र के ज्ञाता अर्थात् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठगुरु तिनको दातुनादि काष्ठ लिये हुए प्राप्त होके तिन गुरुओं से शुद्ध ब्रह्मको श्रवण करके वेदान्तशास्त्र करके जानने योग्य जो परब्रह्मानन्द है तिसको विस्तार पूर्वक[भलीप्रकार] से जानेगा ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रवण करके वेदान्त शास्त्रकी प्रक्रिया के संस्कार से रहित परम श्रद्धालु शिष्य विवेकादि साधनों के जानने की इच्छा करता हुआ शिष्य पुनः प्रश्न करै है ।

शिष्यउवाच—विवेकःकःप्रोक्तःकथमपि चलभ्यःसुललितःकथं चायं स्वान्तेप्रभवति विभो भो दृढतरः ॥ इमं मेसंदेहं विषविटपिनं छिंद्धिकृपया

गुरूं हि त्वां हित्वा कथय कथमेष्या-
म्यचलनम् ॥ ४ ॥

अन्वय पदार्थ—(भो विभो विवेकःकः प्रोक्तः) हे अंतर्यामि रूपसे व्यापक ! विवेक क्या वस्तु है (च सुललितःविवेकःकथं अपिलभ्यः) फिर यह सुन्दर विवेक किस प्रकार प्राप्तहोता है (च अयं विवेकःस्वान्ते कथं दृढतरःप्रभवाति) फिर यह विवेक अन्तःकरण में कैसे दृढतर होता है (इमं मे विष विटपिनं संदेहं कृपया छिंद्धि) यह जो मेरा विषवृक्ष रूप संशयहै तिसको कृपा करके छेदन करो (हित्वांगुरुंहित्वा अचलनम् कथंएष्यामिकथय) तुम गुरुओं को त्याग करके मैं निश्चय की कहां से इच्छा करूं सो कहो अर्थात् सिवाय आपके कोई भी मेरे इस संशय के दूर करने को समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

इसप्रकार कर्मादि वहिरंग साधन सम्पन्न और विवेकादिक तथा श्रवणादिक अंतरंग साधनों से रहित शिष्यको देख और संसाररूपी अग्नि से पीडित शिष्य के दीन वचन को श्रवण कर परमकृपालु श्रीगुरु प्रसन्नता को प्राप्त हुए २ सत्शास्त्रके श्रवणरूप प्रथम साधनमें शिष्य को

प्रवृत्त करत संते विवेक का वर्णन करे हैं।

श्रीगुरुरुवाच—परात्मैको नित्यो निखिल मति बोद्धातिविमलः परानन्दः पूर्णः स्थिर चर गणे चिद्घन तनुः ॥ अनित्यं तद्भिन्नं सकल मपि दृश्यं परिमितं विवेकोयं बोधो गत हृदय मोहैः समुदितः ॥ ५ ॥

अन्वयपदार्थ—श्रीगुरु कहते हैं (एकः परात्मानित्यः) एक परमात्माही नित्य है (तद्भिन्नं परिमितं दृश्यं सकलं अपि अनित्यम्) तिस से भिन्न जो परिच्छिन्न दृश्य प्रपंच है सो सब अनित्य है (गतहृदय मोहैः सं उदितः अयं बोधः विवेकः) जिनके हृदय में से मोह निवृत्त होगया है ऐसे विद्वानों करके भली प्रकार कथनं कियाहुआ यह बोध विवेक है अर्थात् केवल एक परमात्माही नित्य है उससे भिन्न सम्पूर्ण अनित्य हैं यह विवेक का स्वरूप है ॥ ५ ॥

इसप्रकार विवेक के स्वरूप को वर्णन करके विवेकरूप अमृत की स्थिति योग्य जिज्ञासु के हृदयरूप स्वच्छ पात्र का निरूपण करे हैं ॥

यथा पांशु व्याप्ते मलिन मुकुरे श्वेत कपिशौ विविक्तौ दृश्येते कथमपि न चालोकशततः तथात्मानात्मानौ मल मति विविक्तौ न भवतस्ततस्त्यक्त्वा कामं यजन भजनादिं कुरु हरेः ॥ ६ ॥

अन्वय पदार्थ—(यथा पांशु व्याप्ते मलिन मुकुरे आलोकशततः श्वेतकपिशौ विविक्तौ कथं अपि न दृश्येते) जैसे मल करके व्याप्त दर्पण में सैकड़ों प्रकाशों करके भी श्वेत भूसर रंगका विवेचन किसी भांति नहीं होसक्ता (तथा मलमति आत्मा अनात्मा नः विविक्तः न भवतः) तिसी-प्रकार से मलिन बुद्धि में आत्मा अनात्मा का विवेचन नहीं होता (ततः कामं त्यक्त्वा हरेः यजनभजनादिं कुरु) तिस कारणसे बुद्धि की शुद्धि वास्ते हरिके यजन भजनादिकों को कर ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रवण करके श्रीगुरु के वाक्य में परम श्रद्धावान शिष्य गुरु के वाक्यद्वारा सम्पूर्ण जगत् को मिथ्या जानकर गलानी को प्राप्त हुवा तिससे वैराग्य को प्राप्त होनें हेतु

वैराग्य के स्वरूप कारण तथा कार्य और तिसको अधिक के जानने वास्ते पुनः प्रसन्न करै हैं ॥

शिष्यउवाच–स्वरूपं हेतुं चावधि मपि च कार्यं सुविमलं गुरो वैराग्यस्य प्रवद वदतां श्रेष्ठ भगवन् । मुमुक्षां जिज्ञासे शम दम समाधान सुधनं परानन्दं जाने न च वरद तस्यापि विततिम् ७

अन्वय पदार्थ–(हे गुरो वदतां श्रेष्ठ! वैराग्यस्य स्वरूपं प्रवद) हे गुरो कहने वालों मे श्रेष्ठ! प्रथम वैराग्य के स्वरूप को भली प्रकार से कहो (च वैराग्यस्य हेतुं प्रवद) पुनः वैराग्यके कारण को कहो) (च वैराग्यस्य सुविमलं कार्यं प्रवद) फिर वैराग्य के सुन्दर कार्य को कहो (च वैराग्यस्य अवधिं अपि प्रवद) फिर वैराग्य की अवधि [सीमा] को भी कहो (हे भगवन् मुमुक्षां अहं जिज्ञासे) हे भगवन् मुमुक्षता के भी जानने की मैं इच्छा करता हूं (शम दम समाधान सुधनं अहं जिज्ञासे) शम दम उपरमा तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान रूप श्रेष्ठ धन के भी जानने की मैं इच्छा करता हूं (हे वरद परा-

नन्दं अहं न जाने च तस्य अपि विततिं अहं न जाने) हे मोक्ष रूपी वरके देनेवाले श्री गुरु! परमानन्द को मैं नहीं जानता हूँ फिर तिसके विस्तार को भी नहीं जानता हूँ ॥ ७॥

इसप्रकार शिष्य के प्रश्न को श्रवण करके श्रीगुरु वैराग्य के स्वरूप हेतु और आदिकों का वर्णन करें हैं।

श्रीगुरुरुवाच- ब्रह्मेन्द्रादि समस्तभोगविभवास्त्याज्या मया सर्वदा वैराग्यस्य वपुर्मनीडिति मतिर्दुष्टा इमे कारणम् ॥ भोगे लंपटतानि वर्तनमिदं कार्यं च तस्यामलं भोगानां तृणतुल्यबुद्धि दृढता सीमेति संकीर्तिता ॥ ८ ॥

अन्वयपदार्थ—श्रीगुरु कहते हैं। हे शिष्य! (ब्रह्मेन्द्रादि समस्त भोग विभवाः मयासर्वदात्याज्या मनीडिति वैराग्यस्य वपुः) ब्रह्म इन्द्रादिकों के जो सम्पूर्ण भोग ऐश्वर्य हैं सो मेरे करके सर्वकाल में त्यागने योग्य हैं इसप्रकार की जो वृत्ति है सो वैराग्य का स्वरूप है (इ·

मेदुष्टामति वैराग्यस्य कारणम्) यह दुखरूप होने से दुखदाई है ऐसी जो बुद्धि है सो वैराग्य का हेतु है (च भोगेलंपटतानिवर्तनंइदं तस्य वैराग्यस्य अमलं कार्यं) भोगों में लम्पटता की जो निवृत्ति है सो वैराग्य का निर्मल कार्य है (भोगानां तृणतुल्य बुद्धिदृढताइति सीमा संकीर्तिता) भोगों में तृणतुल्यता की जो दृढ वुद्धि है अर्थात् कभी भूलकेभी उनको सुख रूप समझकर फिर उनकी इच्छा न होना यह वैराग्य अवधि [सीमा] कही है ॥ ८ ।

अब त्यागने योग्य पदार्थों की दुःख रूपता को पृथक् २ वर्णन करते हैं ॥

लक्ष्मीं मत्त मनोरमां मृतिफलां रूपादि पुष्पाततां नानानर्थकदर्थ साध्य सवलां व्याला वली संकुलां ॥ विद्युद्वत् क्षणभंगुरां विषलतां श्वभ्रं शरीरं श्रितां त्वं चेदाश्रयसे विवेक मतिमन् मृत्युस्तदा ते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

अन्वय पदार्थ--(हे विवेक मतिमन् चेत् लक्ष्मीं त्वं आश्रयसेततदाते ध्रुवम् मृत्युःभविष्यासि)

हे विवेक बुद्धिमान शिष्य यदि लक्ष्मी को तू आश्रय करेगा तो निश्चय मृत्यु को प्राप्त होवैगा। यहां भविष्यसि क्रिया का ऊपर से अध्याहार करना। फिर कैसी है लक्ष्मी (विषलतां) विष की लता की समान देखनेमात्रही सुन्दर है (मत्त मनोरमां) मोहरूपी मदिराको पियेहुए जो उन्मत्त पुरुषहैं उनके मनको प्रसन्न करनेवाली है (रूपादि पुष्पाततां) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि हैं पुष्प जिसके (मृतफलां) मृत्युरूप है फल जिसका जैसे पुष्पसे फल होता है इसी प्रकार लक्ष्मीरूपी विषलता के शब्दादिरूप पुष्पों से मृत्युरूप फल होता है। तिसको दृष्टान्त करके स्पष्ट करें हैं दृष्टान्त--जिस मृगकी नाभि में से कस्तूरी होती है उसको वधिक वीणा का मधुर शब्द सुनाकर मोहितकरके मारकर उसकी नाभिमें से कस्तूरी को निकाललेता है जैसे मृग केवल एक शब्दमात्र केही विषय से मृत्युको प्राप्तहोता है इसी प्रकार हस्तियों को पकड़नेवाले कागज़ की हथिनी वनाकर किसी गड्ढे के ऊपर स्थित करदेते हैं जव हस्ती उसको सच्ची हथिनी जानकर उससे स्पर्श करने को आता है तव

गड्ढे में गिरकर अवस्थाभर पराधीन रहकर प्राणत्याग करताहै पराधीनता मृत्यु सेभी अधिक दुखरूप है इसी प्रकार पतंग रूपमें आसक्त हो दीपकमें जलमरताहै और मछली रसके लोभसे काँटे में फंसकर मृत्यु को प्राप्तहोतीहै तथा भ्रमर गंधमें आसक्त हो कमल में मुदकर मरजाता है इसप्रकार ये सब मूढजन्तु एक २ विषयरूपी फूल से मृत्युरूप फल को प्राप्तहोते हैं परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि यह पुरुष ज्ञान विचार की निधि होकर भी लक्ष्मी रूपी विषलता से पाँचो विषय रूप पुष्पों की इच्छा करते हैं और विषय रूप पुष्प में जो स्थित मृत्यु रूप फल है उसकी ओर दृष्टि भी नहीं देते। फिर कैसी है लक्ष्मी (नानाऽनर्थकदर्थ साध्य) नाना प्रकार के अनर्थ और दुखरूप जल के सींचने से, उत्पत्ति, वृद्धि और स्थित को प्राप्त होनेवाली है (सवल्लां) महावलवान है अर्थात् जिसको प्राप्तहोति है उसको अपने वशमें करलेतीहै (व्यालावली-संकुलां) काम क्रोधरूप सर्पों की पंक्ति से शाखा शाखा जिसकी घिररही है फिर कैसीहै (विद्युद्व त् क्षणभंगुरां (बिजली की नाईं क्षणभर में नष्ट

होनेवाली है (शरीरं श्वभ्रं श्रता) शरीररूप गड्ढे के आश्रय है स्थिति जिस की ऐसी जो विषलता की समान अपात रमणीयरूप [देखनेमात्रही सुन्दर] लक्ष्मी है हे शिष्य ! तिसको तू आश्रय करेगा तो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवैगा ॥ ९ ॥

अब बाल्यावस्था की दुखरूपताका निरूपण करें हैं ।

बाल्यंरोग शताकुलं हितहरं शान्तेः कुठारं परं युक्तायुक्त विवेकशून्यहृदयं मूर्खादि संघाश्रयम् ॥ नानादोषदशा विलुब्धमनसा मातंगवच्चञ्चलं त्वं चेदाश्रयसे विवेक मतिमन् मृत्युस्तदा तेध्रुवम् ॥ १० ॥

अन्वय पदार्थ—हे विवेकमतिमन् (चेत् बाल्यं त्वं आश्रय से तदा ते ध्रुवं मृत्युः भविष्यसि) हे शिष्य ! यदि बाल्यावस्था को तू आश्रय करेगा तो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवैगा कैसी है बाल्यावस्था (रोगशताकुलं) सैकड़ों रोगों करके व्याकुल है (हितहरं) कल्याण में प्रतिबंधकरूप शत्रु है (शान्तेः कुठारं परं) शान्तिरूपी अमृत-

लता के काटने को परमकुठार है (युक्तायुक्त विवेकशून्यहृदयं) ये मेरे को करने योग्य है यह नहीं करने योग्य है इस विवेक से शून्य है हृदय जिसका (मूर्खादिसंघाश्रयम्) मूर्खों [बालकों] के संग का आश्रय है (नाना दोषदशा विलुब्ध मनसा मातङ्गवत्चञ्चलम्) चन्द्रप्राप्तिप्रार्थनाऽदि नानाप्रकार की दोषदशा करके विलुब्ध जो मन तिससे हस्तीकी नाईं चंचलहै ऐसी दुखरूप बाल्यावस्था में हे शिष्य ! तू ममत्व करेगा तो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवेगा ॥ १० ॥

अब युवावस्था की दुर्दशा को निरूपण करैं हैं।

आधिव्याधितरंग जालजटिलं तृष्णानदीनां गृहं हेयाहेय विकल्पकल्पनमहावर्तं विवेकाहितं ॥ कामक्रोधमहाझषं जलनिधिं मान्यामतं यौवनं त्वं चेदाश्रयसे विवेकमतिमन् मृत्युस्तदा ते ध्रुवम् ॥ ११ ॥

(हे विवेकमतिमन् ! चेत् मान्यामतं यौवनं जलनिधिं त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवम् मृत्युः भविष्यसि) हे शिष्य ! यदि विद्वानों करके अ-

स्वीकृत जो युवावस्थारूप समुद्र है तिसको तू आश्रय करेगा तो निश्चय मृत्यु को प्राप्त होवैगा कैसा है युवावस्थारूप समुद्र (आधिव्याधि तरङ्गजालजटिलं) आधि [मनके दुख] और व्याधि [शरीरके दुख] रूप तरंगों के जाल से व्याप्त है (तृष्णा नदीनां गृहम्) और तृष्णा रूपी नदी का गृह है (हेयाहेय विकल्प कल्पन महा आंवर्त्त)ये मेरेको गृहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है यही कठिन भँवर है जिस में (विवेकरहितं) विवेक से रहित है (कामक्रोधमहाझपं) और कामक्रोधरूप महा भयङ्कर मगर मच्छ जन्तु हैं जिसमें इसप्रकार दुख के सिंधुरूप युवा अवस्था में हे शिष्य ! तू ममत्व करेगा । तो निश्चय मृत्यु को प्राप्त होवेगा ।

अब वृद्धावस्था की अधमता को निरूपण करेंहैं

व्याधि व्यालगृहं विवेक विकलं ह्याशा पिशाच्याश्रयं चिंता जर्जरितांग लोभ दलितं कांतादि हासास्पदम् ॥ आलस्यादि जलेन पूर्णमभितो जीर्णजरा कूपकं त्वं चेदाश्रयसे विवेक मतिमन् मृत्युस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १२ ॥

अन्वयपदार्थ--(हे विवेक मतिमन् चेत् जरा-जीर्णं कूपकं त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवं मृत्युःभवि-ष्यसि) हे शिष्य! यदि वृद्धावस्था रूप अंधकूप को तू आश्रय करेगा तो निश्चय मृत्यु को प्राप्त होगा कैसा है जरारूप जीर्णकूप (व्याधि व्याल-गृहं) दुःख रूप सर्पोंका गृह है (विवेक विकलं) और विवेक से रहित है (हि आशा पिशाच्या श्रयं) और निश्चय आशा रूपी पिशाचीका गृह है (चिन्ता जर्जरि ताङ्ग) और चिंता करके जीर्ण हैं अङ्ग जिसके (लोभ दलितं) लोभ करके द-लाहुआ है चित्त जिसका (कान्तादि हासास्पदं) स्त्री आदिकों के हँसनेका स्थान है (आलस्यादि जलेन अभितःपूर्णं) आलस्यादि रूप जल करके चारों ओर से पूर्ण है ऐसा जो जरारूप अंधकूप है तिसमें तू ममत्व करेगा तो अवश्य मृत्यु को प्राप्त होवैगा ॥ १२ ॥

अब कान्ति कुठार रूप कान्ता का निरूपण करें हैं ॥

भोगान् भोगि समान् कुरोग विष-दान् देहद्रुमं संश्रितान् कान्तां कान्ति कुठारिकां कतिपयैर्मूढैःसमालंबिताम्॥

एवं स्वर्गरसातलादि विभवान् कष्टं कदर्थ प्रदान् त्वं चेदाश्रयसे विवेक म-तिमन् मृत्युस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १३ ॥

अन्वयपदार्थ—(हे विवेक मतिमन् चेत् भोगान् त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवम् मृत्युः भविष्यसि) हे शिष्य! यदि भोगों को तू आश्रय करैगा तौ नि-श्चय मृत्यु को प्राप्त होवैगा पुनः जन्म को प्राप्त होवैगा और फिर मृत्यु को प्राप्त होवैगा इस प्रकार जन्म मृत्युरूप महाभयङ्कर चक्र में ही पड़ाहुआ दुर्दशा को प्राप्त होवैगा अर्थात् विना इनके त्यागके जन्म मृत्यु में घटी यंत्र की नाईं भ्रमण क्रियाकरैगा ॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ [जा-तस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च] अर्थ स्पष्ट है और पूर्व कह भी दिया है कि मृत्यु का और जन्म का सम्बन्ध है सो [लक्ष्मीमत्तमनो-रमां] इस श्लोक से और [भोगान् भोगी स-मान्] इस श्लोक पर्यन्त पांच श्लोकों में जा-नना। फिर कैसे हैं भोग (भोगि समान् कु-रोग विषदान्) सर्प की समान कुरोगरूपी विष को देनेवाले हैं (देह द्रुमं संश्रितान्) देहरूप वृक्ष के आश्रय हैं (हे शिष्य! चेत् कान्तां त्वं आश्रय-

से तदा ते ध्रुवं मृत्युः भविष्यसि) यदि स्त्री का तू आश्रय करैगा तौ अवश्य मृत्यु को प्राप्त होवैगा कैसी है स्त्री। (कान्ति कुठारिकां) कान्तिरूपी लताके काटने को कुठारी है (कतिपयैः मूढैः समालम्बिताम्) किन्हीं भोग लम्पट मूढ पुरुषों करके सेवित है अर्थात् विद्वान् नहीं सेवन करते हैं जिसको (एवं स्वर्ग रसातलादि विभवान् कदर्थप्रदान् कष्टं) इसी प्रकार इस लोक परलोक के भोग ऐश्वर्य दुखरूप होने से दुखके देनेवाले हैं बडे शोक का विषय है कि यह पुरुष उनकू सुख का हेतु जानकर प्रवृत्त हो दुख पाता है और प्रवृत्ति भी नहीं त्यागता परन्तु इस लोक परलोक के भोग दुखरूप होने से त्यागने ही योग्य हैं ॥ १३ ॥

इसप्रकार मृत्यु का भय दिखातेहुए वैराग्य का भलीप्रकार लक्षण वर्णन करके अब मुक्ति में रुचि दिलातेहुये शमादि षट् सम्पत्ति का निरूपण करे हैं ।

चेतश्चंचलतानिवर्तनमलं प्रोक्तं शमं सज्जनै नेत्रादींद्रिय निग्रहं दमपदेनो:

क्तं मुनीनां मतम् ॥ वेदान्तादि गुरूक्त वाक्यविततिः सत्येति श्रद्धांमतिं त्वं चेदाश्रयसे विवेकमतिमन् मुक्तिस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १४ ॥

अन्वयपदार्थ—(चेतःचंचलता निवर्तनं अलं सज्जनैः शमं प्रोक्तं) चित्त की चंचलता की जो अत्यंत निवृत्ति है तिसको सज्जन पुरुष शम कहते हैं (नेत्रादि इन्द्रिय निग्रहं दम पदेन उक्तं मुनीनां मतम्) नेत्रादिक इन्द्रियों को जो रूपादिक विषयों से रोकना उसको दम कहते हैं ऐसा मुनियों का मत है (वेदान्तादि गुरूक्त वाक्यविततिः सत्य इति मतिं श्रद्धां) वेदान्तादि और गुरु के जो वाक्य हैं सो सत्य हैं ऐसी बुद्धि को श्रद्धा कहते हैं (हे विवेक मतिमन् चेत् त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवं मुक्तिःभविष्यासि) हे सत्य असत्य विवेक बुद्धिवान् शिष्य ! इन शम दम श्रद्धा कू यदि तू आश्रय करैगा तौ निश्चय मुक्ति को प्राप्त होवैगा ॥ १४ ॥

योगप्रोक्तयमादि कारणवतीं स्वान्ते निरोधस्थितिं विक्षेपादि निवृत्ति

कार्यनिपुणां शान्तात्मभिः सेविताम्।
निद्रावद्विषयक्षया मुपरतिं मान्यै मुनी-
न्द्रैर्नुतां त्वं चेदाश्रयसे विवेक मति-
मन् मुक्तिस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १५ ॥

अन्वयपदार्थ-(योग प्रोक्त यमादि कारण वतीं) योग में कथन कियेहुए यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि ये अष्ट अङ्ग हैं कारण जिसके (स्वान्तेनिरोधस्थितिम्) अन्तःकरण की निरोधरूपी स्थितिहै स्वरूप जिसका (विक्षेपादि निवृत्ति कार्य निपुणाम्)विक्षेपादि की निवृत्ति रूप कार्य्यमें जो निपुण है (शान्तात्मभिःसेविताम्) शान्त आत्मा विद्वज्जनों करके सेवित है (निद्रावत् विषय क्षयाम्) सुसुप्ति की समान विषयों को नाश करना यह जिस की अवधि है (मान्यैःमुनीन्द्रैःनुतां) और जो मानने योग्य मुनियों करके स्तुति की हुई है (हे विवेक मतिमन् चेत् उपरतिं त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवं मुक्तिः भविष्यति) हे शिष्य! यदि इस उपरति को तू आश्रय करैगा तो निश्चय अनर्थ की निवृत्ति परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्षको प्राप्त होवैगा ॥ १५ ॥

निद्रान्तं विषये चलंत मपिवा संरोध्य चित्तं रिपुं सच्छास्त्र श्रवणेऽस्य योजन मिदं साध्यं समाधानकम्॥
शीतोष्णादि सहिष्णुतां प्रतिदिनं दिव्यां तितिक्षाभिधां त्वं चेदाश्रयसे विवेक मतिमन्मुक्तिस्तदा ते ध्रुवम्॥१६॥

अन्वयपदार्थ—(चित्तंरिपुं निद्रान्तं संरोध्य वा विषये चलंतं अपि संरोध्य अस्य चित्तस्य सत् शास्त्र श्रवणे योजनं इदं साध्यं समाधानकम्) शत्रु जो चित्त है तिस को निद्रा [आलस्य] से रोककरके अथवा विषयों में चलने से रोकके इस चित्त को वेदान्तशास्त्र के श्रवण में जोडना है तिसको समाधान कहते हैं (प्रतिदिनं शीतोष्णादि सहिष्णुतां दिव्यां तितिक्षाभिधां) प्रतिदिन शीतोष्णादि को जो सहना है तिस को सुन्दर तितिक्षा कहते हैं (हे विवेक मतिमन् चेत् समाधानम् तितिक्षां च त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवं मुक्तिः भविष्यसि) हे शिष्य! यदि इस समाधान को तू आश्रय करैगा तो निश्चय मुक्ति को प्राप्त होवैगा॥ १६॥

इसप्रकार तृतीय साधन समाधि षट् सम्पत्ति का वर्णन करके अब चतुर्थ साधन मुमुक्षता का निरूपण करें हैं ॥

भ्रान्तोऽनेक शरीर वृक्ष वितते जीर्णे जगज्जंगले नानादुःख दरिद्र दावजटिले मुक्तः कदा स्यां ततः॥ इत्येवं परिचिंतनात्समुदितामिच्छां मुमुक्षा मिमां त्वं चेदाश्रयसे विवेक मतिमन्मुक्तिस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १७ ॥

अन्वयपदार्थ–(जीर्णेजगज्जंगले अहं भ्रांतः) जीर्ण कहिये अनादि जो जगत् जङ्गलहै अथवा जीर्ण कहिये विचार मात्र ही से छिन्न भिन्न होने वाला ऐसे जगत् रूप जङ्गल में मैं भ्रमण करता हूँ । कैसा है जगत् जङ्गल (अनेक शरीर वृक्षवितते) अनेक शरीररूप वृक्षों करके जो विस्तृत है (नानादुःखदरिद्रदावजटिले) नाना प्रकार के दुख दरिद्र रूपी दावानल [अग्नि] करके युक्त है (ततः अहं कदामुक्तः स्यां) तिस से मैं कब मुक्तहूंगा अर्थात् शीघ्र मुक्त होऊँ (इत्येवं परिचिंतनात् समुदितां इच्छां मुमुक्षां) इस

प्रकार चिंतवन करने से उत्पन्न हुई जो इच्छा है तिसको मुमुक्षता कहते हैं (हे विवेकमति मन् चेत् इमां मुमुक्षां त्वं आश्रय से तदाते ध्रुवम् मुक्तिः भविष्यसि) हे शिष्य ! यदि इस मुमुक्षता को तू आश्रय करेगा तो निश्चय मुक्ति को प्राप्त होवैगा ॥ १७ ॥

इसप्रकार पृथक्२ चारों साधनों का विस्तार पूर्वक निरूपण करके अब चारों की महिमा का वर्णन करते हैं ॥

वैराग्यादि मुमुक्षतांत विततिं प्रोक्ता न्मया ज्ञानदाञ्छास्त्राभ्यास विवर्द्धिता-न्प्रतिदिनं सद्भिः समालंवितान् ॥ आ-त्मज्ञान समाधिनिष्ठकथितान्वेदादि सम्बोधितान् त्वं चेदाश्रयसे विवेकम-तिमन्मुक्तिस्तदा ते ध्रुवम् ॥ १८ ॥

(वैराग्यादि मुमुक्षतांत विततिं ज्ञानदान् मया प्रोक्तान्)वैराग्यआदि मुमुक्षतापर्यंत अर्थात् विवेक वैराग्य शमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता ये जो अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञानके देनेवाले साधन मैंने तुम्हारे प्रति कहे हैं हे विवेकमतिमन् चेत्

साधनचतुष्टयं त्वं आश्रयसे तदा ते ध्रुवं मुक्तिः भविष्यसि) हे शिष्य ! यदि इस साधन च-तुष्टय को तू आश्रय करेगा तो निश्चय मुक्ति को प्राप्त होवैगा कैसे हैं यह साधन (प्रतिदिनं शा-स्त्राभ्यास विवर्द्धितान्) दिन दिन प्रति शास्त्र के अभ्यास करके वृद्धि को प्राप्त होनेवाले हैं (सद्भिः समालंबितान्) सत्पुरुप भी आश्रय करते हैं जिनका (आत्मज्ञान समाधिनिष्ठ कथितान्) आत्मज्ञानी समाधि निष्ठों करके जो कथन कियेगये हैं (वेदादि सम्बोधितान्) वेदा-दिक भी भलीप्रकार बोधन) करते हैं जिनको हे शिष्य ! ऐसे साधन चतुष्टय को तू आश्रय करैगा तो निश्चय मुक्तिको प्राप्त होवैगा यहां [लक्ष्मीमत्त-मनोरमां] इस श्लोक से और [वैराग्यादि मुमुक्षतांतवितति] इन दश श्लोकों पर्यन्त [भविष्यसि] इस क्रिया का अध्याहार करना अर्थात् [तदाते ध्रुवम् मृत्युः भविष्यसि वा मु-क्तिः भविष्यसि] ॥ १८ ॥

श्रवणादिकों की अपेक्षासे विवेकादि जो व-करङ्ग साधन हैं तिन में शिष्य की दृढता को से भैर अब श्रीगुरु श्रवणरूप अंतरंग साधन में त्यवं पारि प्राप्त करे हैं ।

इमानुपायान्परिपाल्यशान्तधीःशास्त्राब्धिपारावरगामिनंगुरुं । संप्राप्य भक्त्या परिपृच्छ्ययत्नतस्ततोऽद्वयंभावयभव्यभावनम् ॥ १९ ॥

अन्वयपदार्थ—(इमान् उपायान्परिपाल्य)इन पूर्वोक्त विवेकादिक उपायों को सम्पादन करके (शान्तधीः) शान्ति बुद्धि शिष्य (शास्त्राब्धिपारावरगामिनं गुरुं संप्राप्य भक्त्यापरिपृच्छ्य) शास्त्र रूप समुद्र के पारावार जाने में समर्थ श्रीगुरुको प्राप्तहोके भक्ति पूर्वक अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम करके नम्रता पूर्वक प्रश्नकरै (ततःअद्वयं भव्यभावनं यत्नतः भावय) तिससे उपरान्त अर्थात् तिनसे पूछकर भव्य [कल्याण] है भावना जिसकी अर्थात् जिसके चिंतन करने से कैवल्य मुक्ति प्राप्तहोती है। हे शिष्य! ऐसा जो अद्वय रूप भव्य भावन ब्रह्म है तिसको यत्न पूर्वक चिंतन करै ॥ १९ ॥

नाज्ञाननाशो नचरागभंजनं नचापि जंतोर्जननादिसंक्षयःभवत्यपि ज्ञानसुधानिधिं विनाततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥ २० ॥

अन्वयपदार्थ—(ज्ञानं सुधा निधिं विना अज्ञान-नाशः न) ज्ञान रूप अमृत सिंधुके विना अज्ञान का नाश नहीं होता (राग भंजनं चअपि न) और राग भी नष्ट नहीं होता (अपिजंतोः-जननादि संक्षयश्च न भवति) और जीवों के जन्म मृत्यु भी भली प्रकार क्षय नहीं होते (ततः-अद्वयं भव्य भावनं भावय) हे शिष्य! तिस कारण अद्वय रूप भव्यभावन ब्रह्मका चिंतनकर ॥२०॥

यदाहि पंचात्मककोशभिन्नतास्व-केस्वरूपेऽधिगताद्दढाभवेत् । तदात्म तत्वं विमलं विकाशते ततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥ २१ ॥

अन्वयपदार्थ—(यदाहि स्वके स्वरूपे पंचात्मक कोश भिन्नता दृढाऽधिगता भवेत्) जिस काल में स्वस्वरूप से पंचकोशों की भिन्नता दृढ निश्चय होती है (तदा विमलं आत्मतत्वं विकाशते) तिस काल में निर्मल आत्मतत्व [सूर्य्यवत्] प्रकाश करताहै अर्थात् जैसे शुद्धस्फटिकका नीलपीतादि रूपों के साथ सम्बन्ध होने से स्फटिक नील पीतादि रूपवान प्रतीत होता है इसीप्रकार

शुद्ध आत्मा का जब अन्नमय कोश के साथ सम्बन्ध होता है तब मैं दुबला हूँ मोटा हूँ इस प्रकार अज्ञानी कल्पना करता है अन्नरस वीर्य से जो उत्पन्न होवै अन्नरस से वृद्धि को प्राप्त होवै और अन्नरूप पृथ्वी में जो लीन होजावै उसको अन्नमय कोश कहते हैं, सो स्थूल शरीर है ॥ और प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान-यह पाँच प्राण और वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-यह पाँच कर्मेन्द्रिय इनदशोंके समूहको प्राणमय कोश कहते हैं । इस प्राणमय कोश के साथ तादात्म्य भाव कल्पना करके अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं भूखा हूँ प्यासा हूँ और श्रोत्र त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण-यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन इन छैओं के समूह को मनोमय कोश कहते हैं तिसके साथ तादात्म्य भाव कल्पना करके मूढ पुरुष अपनेमें संकल्प विकल्प मानताहै और श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक बुद्धि इन छैओं के समूह को विज्ञानमय कोश कहते हैं तिसके साथ तादात्म्यभाव कल्पना करके अज्ञ पुरुष अपने में निश्चय करना मानता है और इन चारों कोशों का जो कारणरूप स्वस्वरूप

का अज्ञान प्रिय-मोद-प्रमोद वृत्ति सहित जो है तिस को आनन्दमय कोश कहते हैं तिसके साथ तादात्म्यभाव कल्पना करके मूर्खपुरुष अपने को सुखी दुखी मानता है इसप्रकार जड़ात्मक अभ्यास निवृत्त होगया है जिस का अर्थात् जिस काल में पंचकोशों का द्रष्टारूप आत्मा को दृढ़ निश्चय करता है तिस काल में सर्व उपाधि शून्य शुद्ध आत्म तत्व प्रकाश करता है (ततः अद्वयं भव्यभावनं भावय) तिसकारण हे शिष्य! अद्वयरूप भव्यभावन ब्रह्म का चिन्तन कर ।२१।

त्रिधाह्यवस्था श्चितिनैवचित्तगास्तासां तुरीयोस्मि दृगेवकेवलः ॥ अयं विशुद्धोऽनुभवो भवापहस्ततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥ २२ ॥

अन्वयपदार्थ-(त्रिधाहि अवस्थाः चितिनैव चित्तगाः तासां केवलः दृगेव तुरीयः अस्मि) जाग्रत स्वप्न सुसुप्ति ये तीन अवस्था आत्मा की नहीं हैं चित्त की हैं तिन तीनों अवस्थाओं से परे केवल द्रष्टा तुरीयरूप मैं हूँ (अयं विशुद्धः अनुभवः भवापहः ततः अद्वयं भव्यभावनं भावय) यह वि:

शुद्ध अनुभव संसाररूप भय को नष्ट करनेवाला है तिस कारण हे शिष्य! अद्वयरूप भव्यभावन ब्रह्म का चिन्तन कर ॥ २१ ॥

शिवोऽस्मि शान्तोऽस्मि निरञ्जनोऽस्म्यहं सत्योऽस्मि नित्योऽस्मि निरन्तरोऽस्म्यहम्॥अयं हि बोधो भवपाशनाशकस्ततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥

अन्वयपदार्थ-(शिवोऽस्मि) मैं कल्याणस्वरूप हूँ (शान्तोऽस्मि) शान्तरूप हूँ (निरञ्जनोऽस्म्यहं) माया से रहित हूँ (सत्योऽस्मि) त्रिकालाबाध्य हूँ अर्थात् मेरा नाश न हुआ न है न होगा (नित्योऽस्मि) भावाभाव रहित हूँ (अयं हि बोधः भवपाश नाशकः ततः अद्वयं भव्य भावनम् भावय) यही बोध संसाररूपी फाँसी के काटनेवाला है तिसकारण हे शिष्य ! अद्वयरूप भव्यभावन ब्रह्म का चिंतन कर ॥ २२ ॥

अनाद्यनन्तोस्म्यणुतोप्यणुर्महा स्थूलादपि स्थूलतरोऽस्मि सर्वतः॥ अयं हि बोधो भवपारतारकस्ततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥ २४ ॥

अन्वयपदार्थ—(अनादि अनन्तः अस्मि) अनादि हूँ अनन्त हूँ (अणुतः अपि महा अणु अस्मि) सूक्ष्मसे भी महा सूक्ष्म हूँ (सर्वतः स्थूलात् अपि स्थूलतरः अस्मि) सर्व वस्तुओं में स्थूल से भी स्थूलतर हूँ (अयं हि बोधः भवपारतारकः ततः अद्वयं भव्यभावनं भावय) यही बोध निश्चय करके संसाररूप समुद्र से पार करनेवाला है तिसकारण हे शिष्य! अद्वयरूप भव्यभावन [कल्याणदायक] ब्रह्मका चिंतवन कर ॥ २४ ॥

स्वतः प्रकाशोस्म्यजडोस्मि सर्वदा विशुद्धविज्ञान घनोस्मि सर्वथा ॥ अयं च बोधो बुधवर्यसंमतस्ततोऽद्वयं भावय भव्यभावनम् ॥ २५ ॥

अन्वयपदार्थ—(सर्वदा स्वतः प्रकाशः अस्मि) सर्वकाल में स्वतः प्रकाशरूप हूँ (अजडः अस्मि) चैतन्यरूप हूँ (च सर्वथा विशुद्धिविज्ञानघनोऽस्मि) फिर निरन्तर विशुद्धविज्ञान घनरूप हूँ (अयं बोधः बुधवर्यसंमतः ततः अद्वयं भव्यभावनं भावय) यह बोध अद्वैत निष्ठ [श्रीशङ्कराचार्यादि] महात्माओं करके संमत है तिसका-

रण हे शिष्य ! अद्वयरूप भव्यभावन [कल्याण-
दायक] ब्रह्मका चिन्तन कर ॥ २५ ॥

अचिंत्यरूपोस्मि विमुक्तवंधनःशुद्धो-
स्मि बुद्धोस्मि कलादि वर्जितः।अयंहि
बोधोरविवद्विराजते ततोऽद्वयंभावय
भव्य भावनम् ॥ २६ ॥

अन्वयपदार्थ—(अचिंत्य रूपः अस्मि) अचिंत्य
रूप हूँ (विमुक्त वंधनः) सम्पूर्ण वंधनो से वि-
मुक्त हूँ (शुद्धोस्मि) शुद्ध स्वरूप हूँ (बुद्धोस्मि)
ज्ञान स्वरूप हूँ (कलादि वर्जितः) अवयवादिकों
से रहित हूँ अर्थात् निराकार हूँ (अयं हि बोधः
रविवत् विराजते ततःअद्वयं भव्य भावनं भावय)
यही बोधसूर्य्य की नाईं प्रकाश करता है तिस
कारण हे शिष्य ! अद्वय रूप भव्य भावन [क-
ल्याण दायक] ब्रह्म का चिंतनकर ॥ २६ ॥

इमं हि बोधंपरिचिंतयज्जनो विशुद्ध
चित्तश्चितिचिंतनैकधीः।भवभ्रमंनैति-
विनष्टवंधनस्ततोऽद्वयं भावय भव्य
भावनम् ॥ २७॥

अन्वयपदार्थ—(योजनःइमं हि बोधंपरिचिंत-

यत् विशुद्ध चित्तःचिति चिंतने एकधीः)जो पुरुष इस बोधको परिचिंतन करता है विशुद्ध चित्तहै और चैतन्य के चिन्तन में अद्वैत वुद्धि है अर्थात् अभेद चिंतन करता है (भवभ्रमंनैति—विनष्ट-बंधनः) तिसको संसार के सत्यत्वका भ्रम नहीं होता। और उसके सम्पूर्ण वन्धन नष्ट होजाते हैं (ततःअद्वयंभव्यभावनंभावय) तिस कारण हे शिष्य ! अद्वय रूप भव्य भावन [कल्याण-दायक] ब्रह्मका चिन्तन कर ॥ २७ ॥

इस प्रकार वर्णन करके शिष्य की सत्शास्त्र के श्रवण में रुचि की परीक्षा के निमित्त अपने कथनको विश्राम दियाहै जिन्हों ने तिनगुरुओं से परम उत्साह को प्राप्त हुआ २ श्रद्धालु शिष्य विशेष श्रवण के निमित्त पुनः प्रश्न करे है।

शिष्यउवाच—शुद्धंबुद्धंशांतिविशेषा करमेकं ब्रह्मानन्दे मग्नमनोभिर्भज-नीयं। वंदे वंद्यंत्वांपरमेशं रमणीयं जि-ज्ञासेऽहंभावनयोग्याद्वयरूपम् ॥२८॥

अन्वयपदार्थ—शिष्य कहता है (वंद्यं त्वां परमेशं गूरुं अहं वंदे) वन्दना करने योग्य जो

तुम परमेश्वररूप गुरुहो सो तुम्हारेताईं मैं वन्दना करता हूँ फिर कैसे हो (रमणीयं) दर्शनमात्र से ही मन को मोहनेवाले परमसुन्दर हो (शुद्धं-बुद्धं-शान्तिविशेषाकरं एकम्) शुद्ध हो-ज्ञान स्वरूप हो-समस्त शान्ति के स्थान हो-अद्वैत रूप हो (ब्रह्मानन्दे मग्न मनोभिः भजनीयं) ब्रह्मानन्द में है मग्न मन जिन का ऐसे जीवन मुक्त शिष्यों की मंडली करके सेवित हो (भावन योग्याद्वयरूपं अहं जिज्ञासे) हे नाथ! भावना करने योग्य जो अद्वयरूप है तिसके जानने की मैं इच्छा करता हूँ ॥ २८ ॥

इसप्रकार जीवन्मुक्ति प्राप्ति की इच्छारूप शिष्य के गूढ़ आशय को जानकर अन्तर्य्यामी श्रीगुरु शिष्य के प्रति उत्तर कहते हैं॥ यहां [ब्रह्मानन्दे मग्नमनोभिः भजनीयं] इस विशेषण करके शिष्य ने जीवन मुक्ति की इच्छा प्रगट की है अर्थात् जैसे और बहुत से जीवन्मुक्त शिष्य आप का भजन करते हैं इसीप्रकार मैं भी करूँ।

श्रीगुरुरुवाच—यस्माज्जातं दृश्यमशेषस्थितिहेतोर्यस्मिन्नन्ते लीनमशेषं जगदेतत् ॥ यस्मिन् शुद्धे दृश्य शतां-

शो न च भातो ब्रह्माद्वैतं भावय सत्यं वितंतभोः ॥ २९ ॥

अन्वयपदार्थ—श्रीगुरु कहते हैं (भो शिष्य ! यस्मात् अशेषं दृश्यं जातं) हे शिष्य ! जिस से सम्पूर्ण दृश्य उत्पन्न हुआ है (यः स्थितिहेतोः) जो सम्पूर्ण दृष्टा की स्थितिका हेतुहै अर्थात् जिस में सम्पूर्ण स्थिति है (अन्ते यस्मिन् एतत् अशेषं जगत्लीनम्) अन्तमें जिस में यह सम्पूर्ण जगत् ! लीन होता है (यस्मिन् शुद्धे दृश्यशतांशश्च न भातः) जिस शुद्धब्रह्म में दृश्य का सौवाँ अंश भी नहीं प्रतीत होताहै(सत्यं विततं अद्वैतं ब्रह्म भावय) हे शिष्य ! ऐसे सत्यरूप व्यापक अद्वैत ब्रह्म का चिन्तन कर ॥ २६ ॥

सच्चिद्रूपं लोकपतीनामपि भूपं मायातीतं मानविहीनं मुनिमान्यम् ॥ यज्ञैर्दानैर्योगविधानैर्गमनीयं ब्रह्माद्वैतं भावयसत्यं विततं भोः ॥ ३० ॥

अन्वयपदार्थ—(सत् चित्रूपं) जो सत्चित रूप है (लोकपतीनां अपिभूपं) जो इन्द्र कुवेरादि लोकपतियों का भी राजा है (मायातीतं)

माया से रहित है (मानविहीनं) जो प्रमाण का विषय नहीं है (मुनिमान्यं) जो मुनियों करके मान्य है (यज्ञैर्दानैर्योगविधानैर्गमनीय) जो यज्ञों करके दानों करके समाधि साधनरूप योग करके प्राप्त होने वाला है (भो शिष्य सत्यं विततं अद्वैतं ब्रह्मभावय) हे शिष्य ! सत्यरूप व्यापक अद्वैत ब्रह्मका चिन्तनकर ॥ ३ ॥

भोगासक्तैर्भावविहीनैर्न च लभ्यं
भावाभावप्रत्ययहीनं प्रणवाख्यम् ॥
नानावेदैःशास्त्रकदम्बै रधिगम्यं ब्रह्माद्वैतं भावय सत्यं विततं भोः ॥ ३१ ॥

अन्वयपदार्थ-(भोगासक्तैः भावविहीनैःनच-लभ्यं) भोगों में आसक्तों को और भाव करके हीनों को अर्थात् भेद बुद्धिवालों को नहीं प्राप्तहोता है (भावाभाव प्रत्ययहीनं) अस्ति नास्ति प्रत्यय से रहित है (प्रणवाख्यम्) ॐ है नाम जिसका (नानावेदैः शास्त्र कदम्बै रधिगम्यं) नाना वेदों करके तथा शास्त्र समूहों करके जो जानने योग्य है (भो शिष्य सत्यं-विततम् अद्वैतं ब्रह्मभाय) हेशिष्य!ऐसे सत्यरूप

व्यापक अद्वैत ब्रह्म का तू चिंतनकर ॥ ३१ ॥

इष्टानिष्टद्वंद्वविहीनं पुरुषाख्यं नित्यानन्तानंदनिधानं नमनीयम् । भेदाभेदभ्रांतिकलंकैर्न चलिप्तं ब्रह्माद्वैतंभावय सत्यं विततं भोः ॥ ३२ ॥

अन्वयपदार्थ—(इष्टानिष्ट द्वंद्व विहीनं) यह वस्तु ग्रहण करने योग्य है यह त्यागने योग्य है इत्यादि—द्वंद से जो रहित है (पुरुषाख्यं) पुरुष है नाम जिसका (नित्यानंतानंद निधानम्) नित्य है अनन्त है आनन्द की निधि है (नमनीयम्) नमस्कार करने योग्य है(भेदाभेद भ्रांति कलंकैः न च लिप्तं) भेद अभेद भ्रांतिरूप कलंक से लिप्त नहीं होता है (भोः शिष्य सत्यं विततं अद्वैतं ब्रह्मभावय) हे शिष्य ! ऐसे सत्यरूप व्यापक अद्वैत ब्रह्म का चिंतनकर ॥ ३२ ॥

इसप्रकार श्रवण करके जीवनमुक्त महात्माओं के लक्षण जानने की इच्छा करके शिष्य पुनः प्रश्न करै है ।

शिष्यउवाच—ब्रह्माद्वैतनिरूपणेन भवतो बोधो मया सादितो जीवन्मुक्ति

महाफलो बुधवरैर्योहर्निशं धार्यतोजी-वन्मुक्ति मिता विशुद्धमनसो ब्रह्मैक-निष्ठात्मकाः केते ब्रह्मविदा वरिष्ठ वद मे शंका यथाशाम्यतु ॥ २३ ॥

अन्वयपदार्थ—(अद्वैत ब्रह्म निरूपणेनभवतः बोधः मया सादितः) अद्वैत ब्रह्म के निरूपण करने से आपके सकाश से मैंने बोध प्राप्त किया है कैसा है बोध (जीवन्मुक्त महाफलः) जीवन्मुक्त है महाफल जिसका) यः बुधवरैः अहः निशंधार्यते (जो विद्वद् वर्य्यों करके सदैवकाल धारण करने योग्य है) भो ब्रह्मविदां वरिष्ट! जीवन्मुक्तिं इताः विशुद्ध मनसः ब्रह्मैक निष्टात्मकः ते के वद। यथा मेशंका शाम्यतु) हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ट श्रीगुरु! जीवन्मुक्ति को जो प्राप्त हैं और विशुद्ध है मन जिनका और एक ब्रह्म में ही स्थित है आत्मा [चित्त] जिनका सो कौन है तिन के लक्षण मेरे प्रति कहो जिस से मेरी शङ्का शान्ति को प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इसप्रकार शिष्य के वचन को श्रवण करके अन्तर्यामी श्रीगुरु नें जाना कि वासनाक्षयत-त्वज्ञान विदेह कैवल्य मुक्ति का हेतु तो इसको

प्राप्त है परंतु जीवन्मुक्त के हेतु मनोनाश यह और चाहता है क्योंकि मनोनाश वासनाक्षय युक्त ही तत्वज्ञान जीवन्मुक्त का हेतु है इस वास्ते मनोनाश की युक्ति को निरूपण करतेहुए जीवन्मुक्तों के लक्षण वर्णन करते हैं।

श्रीगुरुरुवाच-ब्रह्माकारमनोमतिर्व्यवहरन्नात्मैकदृष्टिस्सदा मानामानविहीनबुद्धिविमलःशान्तिं परामाश्रितः॥ दुःखादुःखदशासु यस्य च मनो नास्तं भवेन्नोल्लसे जीवन्मुक्ति मितः सएव मुनिभिर्मान्यो मुनीन्द्रो महान्॥३४॥

अन्वयपदार्थ—श्रीगुरु कहते हैं (ब्रह्माकार मनः ब्रह्माकार मतिः) ब्रह्माकार है संकल्प जिसका पुनः ब्रह्माकार है निश्चय जिस का (व्यवहरन्नात्मैक दृष्टिः सदा) व्यवहार को करतेहुए भी एक आत्मा ही में है सदा दृष्टि जिसकी (मानामानविहीन) मानामान से जो रहित है (बुद्धिविमलः) निर्मल है बुद्धि जिस की (परांशांतिं आश्रितः) परम शान्ति को जो प्राप्त है (दुःख दशासु यस्य मनः न अस्तं भ-

वेत् च अदुःख दशासु यस्य मनः न उल्लसेत्) दुःख को प्राप्त होकरके जिस का मन नहीं शोक को प्राप्त होता और सुख को प्राप्त होकर जिस का मन नहीं हर्ष को प्राप्त होता है (स एव जीवन्मुक्तिं इतः मुनिभिः मान्यः मुनीन्द्रः महान्) सोई जीवन्मुक्ति को प्राप्त है मुनियों करके मान्य हैं मुनीन्द्र है और महात्मा है ॥ ३४ ॥

योजागर्ति सुषुप्ततां परिभवन् यस्याति जाग्रन्नवै यो बोधेन विदग्धवासनतया जन्मादिनाऽनाकुलः। योऽहंकार कुपाश मुक्तमतिमाँल्लाभेऽप्यलिप्तोऽचलोजीवन्मुक्ति मितःसएव मुनिभिर्मान्यो मुनीन्द्रोमहान् ॥ ३५ ॥

अन्वयपदार्थ—(यःसुपुप्ततां परिभवन् जागर्ति) जोसुपुप्तिकातिरस्कार करके सुपुप्तिसे अधिकपरमानन्दको जाग्रत में ही प्राप्तहोता है (यस्यास्ति जाग्रन्नवै) और जिसकी दृष्टि में जाग्रत नहीं है अर्थात् शब्दादिक बिषयाकार वृत्ति में अभिमान से रहित है (यःबोधेन विदग्ध वासन तया जन्मादिनाऽनाकुलः) जो ज्ञान करके विदग्ध वा-

सना होने से जन्मादिभय से रहित है (यःअ-हंकार कुपाश मुक्तिमतिमान्) जो अहंकार रूप कुपाश से मुक्ति बुद्धिवाला है (लाभेपि अलिप्तः अचलः) लाभ में जो लिप्त नहीं होता है और अचल है अर्थात् स्व स्वरूप से चलायमान नहीं होता है (सएव जीवन्मुक्तिं इतः मुनिभिः-मान्यः मुनीन्द्रःमहान्) सोई जीवन्मुक्ति को प्राप्त है और मुनियों करके मानने योग्य है मु-नींद्र है और महात्मा है ॥ ३५ ॥

रागद्वेषभयादिभिः परिरमन् रागा-द्यसक्तात्मको योऽन्तर्व्योमवदच्छताम-नुभवन् कामाद्यलिप्तात्मकः । शान्ता-सारकलामलो गतकलश्चेतश्चमत्कार-कः जीवन्मुक्तिं मितः सएव मुनिभि र्मान्यो मुनीन्द्रो महान् ॥ ३६ ॥

अन्वयपदार्थ—(यः रागद्वेषभयादिभिः परि-रमन् रागादि असक्तात्मकः) जो रागद्वेष भ-यादिकों में रमण करता हुआ भी रागादिकों में नहीं आसक्त होता (यः अन्तः व्योमवत् अच्छतां अनुभवन्) जो अन्तःकरण में आकाश की नाईं

व्यापक स्वच्छ आत्म को अनुभव करता है (कामादि अलिप्तात्मकः) कामादि कों में अलिप्त है मन जिसका (असार कलामलः शान्तः) विषयाकार वृत्तिरूप मन जिसका शान्त होगया है (गतकलः) परि छिन्नता से जो रहित है अर्थात् परिपूर्ण एक रस आत्मा का साक्षात्कार किया है जिसने (चेतःचमत्कारकः) दर्शन मात्र ही से जो चित्त को परम आल्हाद करनेवाला है (सएव जीवन्मुक्तिइतःमुनिभिःमान्यःमुनीन्द्रः महान्) सोई जीवनन्मुक्ति को प्राप्त है मुनियों करके मान्य है मुनीन्द्र है महान् है ॥ ३६ ॥

नानाचारविचारनीतिनिपुणो धैर्य्यं धुरं धारयन् अन्तस्त्यक्तकुभोगरोगकलनो भोगादि भोक्ता बहिः। आत्मीयादि कुदृष्टिकालविकलोऽकर्तृत्वसंकल्पकः जीवन्मुक्ति मितः सएव मुनिभि मान्यो मुनीन्द्रो महान् ॥ ३७ ॥

अन्वयपदार्थ—(यः नानाचार विचार निपुणः) जो वशिष्ठ जी की समान नाना प्रकार के आचार और विचार में निपुण है (यःवि-

चार नीति निपुणः) और जो राजा जनक के समान विचार और नीति में निपुण है (यः-धैर्य्यं धुरं धारयन्) और जो रघुनाथजी की समान धैर्य्य की धुर [गद्दी] को धारण करनेवाला है (यः अंतः त्यक्तकुभोगरोगकलनःबहिः भोगादि भोक्ता) और जो श्रीकृष्णजी की समान अन्तःकरण में से त्याग दी है खोटेभोगों की रोगरूपी कलना [इच्छा] जिसने और वाहर से भोगों को निरासक्त होकर भोगता है (आत्मीयादि कुदृष्टि काल विकलः) श्रीशुकदेवजी की समान यह मेरा है यह तेरा है इत्यादि खोटी दृष्टिके काल से जो रहित है (अकर्तृत्व संकल्पकः) किसी प्रकार काभी जो संकल्प नहीं उठाना (सएव जीवन्मुक्ति इतः मुनिभिः मान्यः मुनीन्द्रःमहान्) सोई जीवन् मुक्तिको प्राप्त है मुनियों करके मान्य हैं मुनीन्द्र है महान् है ॥३७

संसारे सरणोन्मुखे विरसदे हित्वामहारण्यके ह्याशापाशशताकुलात्मजनतामेकान्तभूमौ स्थितः॥ आत्मानात्मविवेकवृत्तिमभितः सम्पादयन् यः

स्वयं जीवन्मुक्तिमितः सएव मुनिभिर्मान्यो मुनीन्द्रो महान् ॥ ३८ ॥

अन्वयपदार्थ—(हि आशापाश शताकुलात्मजनतां संसारे हित्वा एकान्तभूमौ स्थितः) आशा रूपी सैकड़ों फांसियों करके व्याकुल जो पुत्रादिक देहसम्बन्धी हैं उनको संसारमें त्यागकरके एकान्तभूमि में स्थितहै कैसे संसारमें (सरणोन्मुखे) कालके मुख के जो सन्मुख स्थित है अर्थात् क्षणभर भी स्थितिका विश्वास नहीं है जिस का (विरसदे) परमार्थ प्रयोजन शून्य नानाप्रकार के अनर्थ और क्लेश को जो देनेवाला है (महारण्यके) महाभयङ्कर वन है ऐसे संसार में देह सम्बन्धियों को त्यागकर एकान्तभूमि में स्थित (आत्म अनात्म विवेकवृत्तिं अभितः यः स्वयं सम्पादयन्) आत्मा अनात्मा की विवेचनरूप वृत्तिको जो चारों तरफसे चित्तको निग्रह करके स्वयं सम्पादन करता है (सएव जीवन्मुक्तिं इतः मुनिभिः मान्यः मुनीन्द्रः महान्) सोई जीवन्मुक्ति को प्राप्त है—मुनियों करके मान्य है मुनीन्द्र है और महान् है ॥ ३८ ॥

शुद्धांशान्तमतिं मदादिविकलां प्रा-

प्यांशुभैः कर्मभिर्दृश्याकार विकार-
कान्तिविधुरां ब्रह्मैकनिष्ठां नयन् ॥ ब्र-
ह्मानन्दसमुद्रमग्नमतितो भोगेषु नास
ज्जते जीवन्मुक्तिमितः सएव मुनिभि-
र्मान्यो मुनीन्द्रो महान् ॥ ३९ ॥

अन्वयपदार्थ—(यः शुद्धां शान्तमतिं ब्रह्मैक निष्ठांनयन्) जो शुद्ध शान्त मति को एक ब्रह्म में स्थित करता है कैसी मति है (मदादिविकलां) मदादिकों से रहित है (शुभैः कर्म्मभिः (प्राप्यां) शुभ कर्म्मों करके प्राप्त होनेवाली है (दृश्याकारविकार कांतिविधुरां) दृश्य आकाररूप संसार विकार की इच्छा से जो रहित है ऐसी बुद्धि को ब्रह्म में जो स्थित करता है (ब्रह्मानन्द समुद्र मग्न मतितो भोगेषु ना सज्जते) ब्रह्मानन्दरूप समुद्र में जो मग्नमति है और भोगों में जो नहीं आसक्त होता है (स एव जीवन्मुक्ति इतः । मुनिभिः मान्यः मुनीन्द्रः महान्) सोई जीवन्मुक्ति को प्राप्त है । मुनियों करके मान्य है । मुनीन्द्र है और महान् है ॥ ३९ ॥

भेदालोक कलंक पंक पतनं हित्वा विशुद्धा मतिर्व्यर्थानर्थ कदर्थनादि रहिता यस्यातुलानिश्चला ॥ सच्चिच्छुद्ध विबुद्धरूप ललिते लीनापरे ब्रह्मणि जीवन्मुक्ति मितः स एव मुनिभिर्मान्यो मुनीन्द्रो महान् ॥ ४० ॥

अन्वयपदार्थ—(भेदालोक कलंक पंक पतनं हित्वा) भेददृष्टिरूप कलंकपङ्क में गिरना जिसने त्याग दिया है (व्यर्थानर्थ कदर्थनादि रहिता) परमार्थ शून्य अनर्थ कष्टादिकों से जो रहित है अर्थात् कष्टरूप भोगों की इच्छा नहीं है जिस को (यस्य माति विशुद्धा) और जिस की बुद्धि शुद्ध है (अतुला) अतुल्य है (निश्चला) निश्चल है (सत् चित् शुद्ध विशुद्ध रूप ललिते परब्रह्मणिलीना) सत् चित् शुद्ध ज्ञानस्वरूप सुन्दर परब्रह्म में जिस की बुद्धि लीन है (स एव जीवन्मुक्तिं इतः । मुनिभिः मान्यः । मुनीन्द्रः महात्) सोई जीवन्मुक्ति को प्राप्त है मुनियों करके मान्य है मुनीन्द्र है और महान् है ॥ ४० ॥

जीवन्मुक्ति विचारणेयममला कैव-
ल्यमुक्तिप्रदा रूढायस्य विचारलम्पट
दृशश्चित्तस्थले निर्मले ॥ अभ्यासामृ-
तसेचनादुपचिता मन्दारशाखाशुभा
जीवन्मुक्तिमितः सएवमुनिभिर्मान्यो-
मुनीन्द्रोमहान् ॥ ४१ ॥

अन्वयपदार्थ-(इयं जीवन्मुक्तिविचारणा शु-
भा मन्दारशाखा यस्यांविचारलम्पटदृशः निर्मले
चित्तस्थलेरूढा) ये जीवन्मुक्ति विचाररूप श्रेष्ठ
मन्दारशाखा [कल्पवृक्ष] जिस विचारलम्पट
दृष्टि पुरुषके निर्मल चित्तरूप स्थानमें लगी है
कैसी है जीवन्मुक्ति विचाररूप मन्दारशाखा
(अमला) मल से रहित है (कैवल्यमुक्तिप्रदा)
कैवल्यमुक्तिरूप फल के देनेवाली है (अभ्यासा-
मृत सेचनात् उपचिता) अभ्यासरूप अमृतके
सींचने से उत्पन्न होती है ऐसी मन्दार शाखा
जिसके चित्तमें स्थितहुई (सएव जीवन्मुक्तिं
इतः मुनिभिः मान्यः मुनीन्द्रः महान्) सोई
जीवन्मुक्ति को प्राप्त होताहै मुनियों करके मान्य
है मुनीन्द्र है और महान् है ॥ ४१ ॥

श्रीगुरुमुख से विवेकवैराग्यादिकोंके श्रवणसे निवृत्तिको प्रधान जानाहै जिसने सो शिष्य निवृत्ति प्रवृत्तिवाले दोनों प्रकार के जीवन्मुक्तों के लक्षण सुनके अति विस्मयको प्राप्त हुआ २ शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

शिष्य उवाच-गुरोज्ञानमूर्ते नमस्ते-ऽस्तु नित्यंसमाधिस्थितो वाविहर्ता जगत्याम्॥प्रबुद्धात्म तत्त्वावुभावेव वर्यौ तयोः कोधिको ब्रूहिमे ब्रह्मनिष्ठ॥४२॥

अन्वयपदार्थ—हे गुरो ज्ञानमूर्ते! ते नित्यं नमः अस्तु) हे ज्ञानमूर्ति श्रीगुरो ! तुम्हारे ताईं मेरा नित्य ही नमस्कार हो (प्रबुद्धात्मतत्त्वासमाधिस्थितः वा जगत्यां विहर्ता उभावेववर्यौ तयोः को ऽधिकः मे ब्रूहि) आत्मतत्त्व भलीप्रकार जानाहै जिसने सो समाधि में स्थित है अथवा जगत् में बिहार करता है यद्यपि वह दोनों श्रेष्ठ हैं तथापि तिन दोनों में से कौन अधिक है सो मेरे प्रति कहो हे ब्रह्ममें स्थितिवाले ॥ ४२॥

इस प्रकार शिष्य के संशय से व्याकुल वचन को श्रवणकरके श्रीगुरु वचनामृतकी वृष्टि करतेहैं.

श्रीगुरुरुवाच-प्रबुद्धोवने संस्थितःशांतचित्तः प्रबुद्धश्च यो वा प्रवृत्तौ निमग्नः अनासक्तचित्तौ चिरंचिन्निमग्नौ समौ-मुक्तिमंतौ परब्रह्मनिष्ठौ ॥ ४३ ॥

अन्वयपदार्थ-(यःप्रबुद्धशांतचित्तःवने संस्थितः वा यः प्रबुद्धः प्रवृत्तौ निमग्नः) जो ज्ञानी शान्त चित्त वनमें स्थित है अथवा जो ज्ञानी प्रवृत्ति में निमग्न हैं (अनासक्तचित्तौ) और दोनों अनासक्त चित्त हैं अर्थात् श्रीशुकदेवजी की भाँति निवृत्ति में अनासक्त चित्त है और राजा जनक की नांई प्रवृत्ति में अनासक्त चित्त हैं (चिरंचिन्निमग्नौ) चैतन्य में हरवक्त दोनों निमग्न हैं (तौद्वौपर-ब्रह्मनिष्ठौसमौ मुक्तिमंतौ) सो दोनों परब्रह्म में निष्ठावाले समान मुक्तिमान हैं अर्थात् जो ज्ञानी निवृत्ति में अनासक्त को देहपात के पश्चात् वा देह की स्थिति में सुख है सोई पामर सुख प्रवृत्ति में निरासक्त ज्ञानी कोभी है ॥ ४३ ॥

मनोमत्त मातंगमारोध्यशुद्धे परा-नन्दकन्दे यतीन्द्रैः प्रबुद्धैः ॥ परब्रह्म-णीशे सदाधारयेते समौ मुक्तिमन्तौ परब्रह्मनिष्ठौ ॥ ४४ ॥

अन्वयपदार्थ—(मनःमत्तमातंगं आरोध्यशुद्धे-परानन्दकन्दे परब्रह्मणीशे सदाधारयेते) उन्मत्त हस्तीवत् मनको रोक करके शुद्ध परमानन्द के कारण रूप परब्रह्म ईश में जो सदाधारण करते हैं कैसा है परब्रह्मईश (यतीन्द्रैः प्रबुद्धे) यतीन्द्रियों करके जो जानने योग्य है (तौ परब्रह्मनिष्ठौसमौ मुक्तिमन्तौ) सो दोनों परब्रह्मनिष्ठ समान मुक्ति-मान हैं ॥ ४४ ॥

न कर्तास्मि भोक्ता न गन्तास्मिमंता जडासंगसंगेन सक्तो न चाहम्॥ जगत् सार कर्तेति यौ भावयेते समौ मुक्तिम-न्तौ परब्रह्मनिष्ठौ ॥ ४५ ॥

अन्वयपदार्थ—(न कर्त्तास्मि) न मैं कर्त्ता हूँ (न भोक्तास्मि) न मैं भोक्ता हूँ (न गन्तास्मि) न मैं गमन करता हूँ (न मन्तास्मि) न मैं मनन करता हूँ(च जडासंगसंगेन अहं न सक्तः) और न मैं वि-षयासक्त अन्तःकरणके संगसे आसक्त हूँ (जग-त्सार कर्त्ता इति यौ भावयेते) जगत्में साररूप हूँ अर्थात् सत्ता स्फूर्त्तिरूपसे सर्व में पूर्ण हूँ और जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हूँ इस प्रकारका भाव जिन दोनोंका है अर्थात् इसप्रकार

के भाववाला प्रवृत्ति में हो चाहे निवृत्ति में हो (तौ परब्रह्मनिष्ठौ समौ मुक्तिमन्तौ)सो दोनों परब्रह्मनिष्ठ समान मुक्तिमानहैं ॥ ४५ ॥

न भूम्यादि विश्वं मनो बुद्धिमत्ता जनिर्नो मृतिर्नो न जिज्ञासुतेति ॥ न बद्धो न मुक्तो दृढंभावयेते समौ मुक्तिमन्तौ परब्रह्मनिष्ठौ ॥ ४६ ॥

अन्वयपदार्थ–(न भूम्यादि विश्वं) न भूमिआदि जगत् हूँ (न मनः) न मन हूँ (न बुद्धिमत्ता न बुद्धिमान हूँ (जनिर्नो) न जन्मवाला हूँ (मृतिर्नो)न मृत्युवाला हूँ (न जिज्ञासुतेति) न जिज्ञासू हूँ (न बद्धः) न बद्ध हूँ (न मुक्तः)न मुक्त हूँ (दृढंभावयेते)ऐसी दृढभावनाहैं जिनकी (तौ परब्रह्मनिष्ठौ समौ मुक्तिमन्तौ) सो दोनों परब्रह्म निष्ठ समान मुक्तिमानहैं ॥ ४६ ॥

मया पूर्वगीतं द्वयोर्यद्धिसाम्यं प्रबुद्धानुभूतं वसिष्ठादिमान्यं ॥ तदादाय संसारपारं गतौ यौ समौ मुक्तिमन्तौ परब्रह्मनिष्ठौ ॥ ४७ ॥

अन्वयपदार्थ–(द्वयोर्यद्धिसाम्यंमयापूर्वगीतं)

दोनों की समानता जो मैंने पूर्वकही है (प्रबुद्धा-नुभूतं) ज्ञानी जिसको अनुभव करते हैं (वसिष्ठादिमान्यं) वसिष्ठादिक महर्षि जिसको मानते हैं (तदाद्राय संसार पारंगतौ यौ परब्रह्म निष्ठौ समौ मुक्तिमन्तौ) यह दोनों की समानता को जोधारण करता है सो संसार से पारहोता है सो दोनों परब्रह्म निष्ठ समान मुक्तिमान हैं ॥४७॥

इसप्रकार श्रवण करके भी जो संशय की निवृत्ति भली प्रकार नहीं हुई इस हेतु से शिष्य अपने संशय को पुनः स्पष्टकरके निवेदन करैहै॥

शिष्यउवाच-गुरो शुद्धे बुद्धे परमविमले मग्नमतिमन् कथं पंकेमग्ना विमलतनुका मुक्तजनता। ततो जीवन्मुक्तो विहरति कथं मे वद विभो द्रुतं मे संदेहानलजटिलचित्तं शमय भो ॥ ४८ ॥

अन्वयपदार्थ-(भोगुरो-शुद्धे-बुद्धे-परमविमले-मग्नमतिमन्) हे गुरो! शुद्ध ज्ञान स्वरूप परम विमल ब्रह्म में मग्न बुद्धिवाले (मुक्त जनतापंके-मग्ना कथं विमल तनुका) मुक्त पुरुष प्रवृत्ति रूप निकृष्ट में मग्न हुआ २ कैसे विमलतनु होसक्ता

है (हे विभो ततः जीवन्मुक्तःकथं विहरति मे वद) हे गुरो ! तिस कारण से जीवन्मुक्त किस प्रकार विचरता है मेरेप्रति कहिये (संदेहानल-जटिल मे चित्तं द्रुतं शमय) यह संशय रूपी अग्नि करके व्याकुल जो मेरा चित्त है तिसको शीघ्र शान्त करिये ॥ ४८ ॥

इसप्रकार पुनः २ प्रश्नको श्रवण करके भी नहीं उद्विग्न मन हुए २ करुणासिंधु श्रीगुरुपरमानन्द दरसाते मधुरवाणी से इसप्रकार उत्तर कहते हैं कि जिससे शिष्यको पुनः शंका न हो ।

श्रीगुरुरुवाच—परिक्षीणेऽज्ञाने विगलति सति भ्रांति जलदे निरायासस्थाने समधिगत आत्मन्यतितते । विकल्पौघे लूने ललितसुखदे सैंधवघने परिज्ञाते तत्वे जगति रविभाभं विहरणम् ॥

अन्वयपदार्थ— श्रीगुरु कहते हैं (अज्ञाने परिक्षीणे सति) अज्ञान के भली प्रकार क्षीण भए हुए (भ्रान्ति जलदे विगलति सति) भ्रान्तिरूपी मेघ के गलित भते (आत्मनि अतितते निरायासस्थाने समधिगते सति) व्यापक आत्मा नि-

रायास स्थान में भलीप्रकार प्राप्त हुआ २ (विकल्पौघेलने सति) विकल्पों के समूह के नष्ट हुए २ (ललित सुखदे सैंधव घने तत्वे परिज्ञाते सति जगति रविभाभं विहरणम्) सुन्दर सुख को देनेवाले सैंधवघन [स्वरूप] तत्त्व का भली प्रकार ज्ञान हुआ हुआ सूर्य्य की किरणों के समान जीवन्मुक्त का जग में विचरना है अर्थात् जैसे सूर्य्य की किरणें मलिन पदार्थ और शुद्ध पदार्थ दोनों पर पड़ती हैं परंतु लिपायमान नहीं होतीं इसीप्रकार प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों के संग से जीवन्मुक्त भी निर्दोष है ॥ ४६ ॥

विभिन्ने दुर्भेदे सततमृति जन्मादि भयदे चिदानन्दाद्वैते कतिविध परिच्छेदविधुरे ॥ मनोवाचातीते श्रुतिविविधगीतेऽति विमले परिज्ञाते तत्त्वे जगति रविभाभं विहरणम् ॥ ५० ॥

अन्वयपदार्थ—(सततमृति जन्मादिभयदे दुर्भेदे विभिन्ने सति) निरन्तर जन्म मृत्युरूप भय का देनेवाला जो भेदरूप दुष्ट है तिसके भली प्रकार भेदन हुएसतें (चिदानन्दाद्वैते कति विध परिच्छेदविधुरे) चिदानन्द अद्वैत देशकाल

वस्तु परिच्छेद से रहित (मनोवाचातीते श्रुति विविधगीते अति विमले तत्त्वे परिज्ञाते सति जगति रवि भाभं विहरणम्) मनवाणी से रहित वेद करके विविध प्रकार से जो गान किया हुआ है ऐसे तत्त्व का भली प्रकार ज्ञान होते सतें सूर्य्य की किरणों के समान जीवन्मुक्त का संसार में विचरना है ॥ ५० ॥

प्रसन्ने चित्तत्त्वे पर रस समा स्वाद भरिते भवातीते भव्ये भव मुखसुरेशैरधिगते ॥ गुणातीते सत्ये सकल विकल्पे मायिक परे परिज्ञाते तत्त्वेजगति रवि भाभं विहरणम् ॥ ५१ ॥

अन्वयपदार्थ—(पररस समास्वाद भरिते चित्तत्त्वे प्रसन्ने सति) परमरसरूप आस्वाद के परिपूर्ण और चैतन्य तत्त्व के प्रसन्न होते सतें (भवातीते भव्ये भवमुखसुरेशैरधिगते) संसार से रहित है दिव्यरूप है महादेव हैं मुख्य जिन में ऐसे सम्पूर्ण देवताओं को जो प्राप्त होने योग्य है (गुणातीते) सत रज तम गुणों से रहित है (सत्ये) सत्यरूप है (सकल विकल्पे)

स्थूल सूक्ष्मादि अवयवों से रहित है (मायिक परे) मायिक पदार्थों से परे है (तत्त्वे परिज्ञाते सति जगति रवि भाभं विहरणम्) ऐसे तत्त्व का भली प्रकार ज्ञान होते सतें जीवन्मुक्त का सूर्य्य की किरणों की समान संसार विचरता है।

रथोऽस्थायी देहश्चपलतुरगाश्चेन्द्रियगणो महाबुद्धिः सूतः परमसुखधाम्न्यद्य निविशे॥ रथारूढोहं नो जननमरणानर्थगइति परिज्ञाते तत्त्वे जगति रविभाभं विहरणम् ॥ ५२ ॥

अन्वयपदार्थ—(अस्थायी देहः रथः) नहीं स्थिर रहनेवाला देहरूपी रथ (च इन्द्रियगणः चपल तुरगाः) और इन्द्रियों के समूहरूप जिस रथ के चंचल घोड़े हैं (महाबुद्धिःसूतः) शुद्ध बुद्धिरूपी सारथी है (अहंरथारूढःपरमसुखधाम्नि अद्य निविशे) मैं ऐसे रथ में आरूढ हुआ २ परम सुखरूप धाममें अभी से निवास करता हूँ (जनन मरणानर्थग इति न) जन्म मरण रूप अनर्थ भी मेरेको नहीं है ऐसेभली प्रकार तत्त्व के ज्ञान होएसतें जीवन्मुक्तका सूर्य्य की किरणों के समान संसार में विचरना है ॥ ५२ ॥

इदं जीवन्मुक्तव्यवहरणमासाद्य म-
तिमान् य आधत्ते स्वान्ते शमदमस-
माध्याद्युपचिते परब्रह्मानन्दं समनुभ-
वति भ्रान्तिरहितो भवेत् कैवल्यात्मा
विधिहरिहरप्राप्यमहिमा ॥ ५३ ॥

अन्वयपदार्थ—यः मतिमान् इदं जीवन्मुक्त व्य-
वहरणं आसाद्य शम, दम, समाधि आदि उपचिते
स्वान्ते आधत्ते) जो बुद्धिमान् पुरुष इस जीवन्मु-
क्तोंके व्यवहार को भलीप्रकार जान करके शम,
दम, समाधि आदि साधन करके सम्पन्न अन्तःक-
रणमें श्रद्धापूर्वक धारण करता है (भ्रान्तिरहितः
परब्रह्मानन्दं समनुभवति) भ्रान्तिसे रहित हो-
कर परब्रह्मानन्द को भलीप्रकार अनुभव करता
है (विधिहरिहर प्राप्यमहिमा कैवल्यात्मा भ-
वेत्) ब्रह्मा विष्णु और शिवको होनेवाली महि-
मारूप कैवल्य आत्मा होजाता है ॥ ५३ ॥

आनन्दकारीं लहरीमिमां शुभां,
श्री केशवानन्द यतीन्द्र निर्मितां ।
गायन्ति शृण्वन्ति विचारयन्तिये,
कैवल्यमुक्तिं परियान्ति ते ध्रुवम् ॥

इति श्रीमदुदासीन परमहंस पण्डित श्रीगौरदेव शिष्य परमहंस
स्वामिकेशवानन्दनिर्मिताऽनुभवानन्दलहरी समाप्ता ।

अन्वयपदार्थ—(इमांशुभांलहरीं श्रीकेशवानन्द यतीन्द्र निर्मितां आनन्द कारीं) यह शुभलहरी श्रीकेशवानन्द यतिराज की निर्म्माण की हुई आनन्द करनेवाली है। (ये जनाःगायान्ति शृण्वन्ति विचारयन्ति तेध्रुवं कैवल्य मुक्तिं परियंति) जो मनुष्य गान करते हैं श्रवण करते हैं विचार करते हैं सो निश्चय करके कैवल्य मुक्ति को प्राप्तहोते हैं॥ ५४ ॥

इति श्रीस्वामिकेशवानन्दशिष्य श्रीस्वामिप्रकाशानन्दशिष्येण शंकरानन्दावधूतेनविरचिता शंकरदीपिकाभाषाटीका समाप्ता ॥